पंजाब-केसरी—
लाला लाजपत राय

भारतीय स्वाधीनता को मूर्तिमान् करने में जिन शिल्पियों का आदरणीय योगदान रहा है, उनमें पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय का अन्यतम स्थान है।

किसी चिरस्मरणीय जन-सेवा में सफलता पाने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उनका विकास करने के लिए उन्होंने कठोर साधना की थी। लाला लाजपत राय के अप्रतिम व्यक्तित्व के चार स्तंभ थे। लगन, पुरुषार्थ, साहस और धैर्य।

लाला लाजपतराय एक आत्म-निर्मित व्यक्ति थे। वे उन अवसर प्राप्त अग्रस्थों में नहीं थे, जिन्हें पैतृक-परंपरा से साधन और सुविधाएँ मिल जाया करती हैं। लाला लाजपत राय ने अपने को उद्योग की तपस्या में तिल-तिल तपाकर कण-कण गढ़ा था।

लाला लाजपत राय का जन्म एक अत्यंत निर्धन वैश्य परिवार में २८ जनवरी सन् १८६५ में पंजाब के जिला फीरोजपुर की मोगा तहसील के अंतर्गत एक छोटे-से गाँव ढोडिग्राम में हुआ था। यह ग्राम उनका ननिहाल था। कुछ परंपरा और कुछ निर्धनता के कारण इनके पिता श्री राधाकृष्ण ने इनकी गर्भवती माता गुलाबदेवी को उनके पिता के घर भेज दिया था।

लाला लाजपत राय के पिता श्री राधाकृष्ण एक साधारण अध्यापक थे। मात्र पच्चीस रुपये वेतन पाते थे, जो अंत में जाकर पैंतीस रुपये मासिक हो गया था। ऐसे निर्धन पिता से ऐसी आशा कैसे की जा सकती थी कि वे अपने पुत्र को वकालत जैसी उच्च शिक्षा दिला सकते थे ? किंतु लाला लाजपत राय ने अपने उद्योग और परिश्रम के बल पर वकालत की उच्च परीक्षा पास की और एक सफल वकील बने। उन्होंने अपनी उन्नति के लिए अपने अन्य भाई-बहिनों के साथ अन्याय नहीं किया। कभी नहीं चाहा कि पिता

परिवार का तन-पेट काटकर उन्हें उच्च शिक्षा के लिए साधन दें। उन्हें तो अपनी लगन और पुरुषार्थ पर भरोसा था। इसी का उन्होंने अवलंब लिया और वकील बनने की अपनी आकांक्षा पूरी कर ली।

लाला लाजपत राय की इस आकांक्षा का भी एक आधार था। वे केवल वकील बनने के लिए ही वकील बनना नहीं चाहते थे और न यही चाहते थे कि वकील बनकर खूब पैसा कमाएँ और समाज में शान-शौकत से जीवनयापन करें। यदि उनकी यह आकांक्षा इसी विचार तक सीमित होती तो उसकी कोई महत्ता न होती। न जाने कितने लोग वकालत पढ़ते और वकील बनते रहते थे। उन्हीं में से एक यह भी हो जाते। दूसरों की तरह खाते-कमाते और एक दिन इस भीड़ से भरी दुनिया से समाज पर बिना कोई छाप छोड़े चले जाते। उनकी इस आकांक्षा के पीछे एक महान् मंतव्य निहित था और उसी मंतव्य ने उन्हें एक साधारण व्यक्ति से असाधारण व्यक्ति बना दिया।

वकील बनने की उनकी आकांक्षा केवल आकांक्षा नहीं थी, वरन् वह एक आवश्यकता थी। लाला लाजपत राय के हृदय में देश की पराधीनता और समाज की पतितावस्था की बड़ी गहरी कसक थी। उनका हृदय उसके उद्धार और सेवा करने के लिए व्याकुल रहता था। क्यों न व्याकुल रहता ? वे समाज के प्रति कृतघ्न व्यक्तियो में से नहीं थे, जो अपने मतलब से मतलब रखते और समाज की ओर ध्यान न देते। जिस समाज में वे पैदा हुए थे और जिस देश में उन्होंने जन्म लिया था, उसकी सेवा करना वे अपना कर्तव्य मानते थे।

उन दिनों वकालत ही एक ऐसा क्षेत्र था, जिसमें प्रवेश लेकर आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का सम्मानपूर्वक हल करने का अवसर रहता था। सुधारवृत्ति की हलचल उन दिनों उसी क्षेत्र में अधिक चल रही थी। जरूरी था कि जहाँ जिस बात की संभावना अधिक थी वहीं जाया जाता। निदान निर्धनता का दोष मिटाने, जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने और जन-सेवा द्वारा मनुष्यता को सार्थक बनाने के लिए उन्होंने वकालत को अपना

आधार लक्ष्य बनाया और उसे प्राप्त करने के लिए अथक पुरुषार्थ किया।

उस घोर निर्धनता की अवस्था में भी श्री राधाकृष्ण अपने पुत्र के लिए जो कुछ भी कर सकते थे, उन्होंने किया। पहले तो उन्होंने लाजपत राय को स्वयं अपने आप ही घर पर पढ़ाया। इसके लिए वे अपनी व्यस्त दिनचर्या में से नित्य कुछ समय निकाल ही लेते थे। अनंतर उन्होंने उन्हें रोपड़ में, जहाँ उस समय वे काम कर रहे थे, एक राजकीय मिडिल स्कूल में प्रवेश करा दिया। वह स्कूल केवल छठी कक्षा तक ही था। लाजपत राय ने क्रम से उसकी सारी कक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर लीं। आयु के देखते हुए उनकी यह सफलता सराहनीय थी। वे स्कूल में सबसे कम आयु के विद्यार्थी थे। लेकिन शुरू से ही अपने जीवन लक्ष्य के प्रति उत्सुक होने के कारण उस छोटी अवस्था में भी लाजपत राय अधिकतर अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान देते थे। जब तक अपना पाठ याद नहीं कर लेते थे खेलना तो खेलना, खाने तक की ओर ध्यान न देते थे। कर्तव्य के प्रति इसी एकाग्र लगन ने उन्हें एक मेधावी छात्र का गौरव प्रदान कर दिया। क्या बालक और क्या प्रौढ़, क्या नर और क्या नारी ? जो भी कर्तव्य के प्रति परिश्रम और पुरुषार्थ का अवलंबन लेकर चलता है, वह सफल हो ही जाता है।

लाला लाजपत राय की अब अगली पढ़ाई के लिए अवरोध शुरू हो गया। रोपड़ में अब आगे कक्षाएँ नहीं थीं, और पिता का भी स्थानांतरण शिमला हो गया। पच्चीस रुपये मासिक के अल्प वेतन में संभद न था कि वे परिवार को अपने साथ ले जाते और शिमला में लाजपत राय की शिक्षा दिलाते। निदान उन्होंने हताश होकर बच्चे के शिक्षा के संबंध में छाती पर पत्थर रख लिया।

पिता परिस्थितियों से जरूर हताश हो गए, किंतु पुत्र हताश न हुआ था। उदीयमान और अस्तमान भावों में यही तो अंतर हो जाता है। परिस्थितियाँ जहाँ एक को उत्साहित करती हैं, वहाँ दूसरे को निरुत्साह। इसीलिए तो कहा गया है कि परिस्थितियों से हार मानकर कभी आत्म-समर्पण मत करो। भविष्य के उज्ज्वल चित्रों की रक्षा के लिए वर्तमान से संघर्ष करते रहो और अतीत के उन संयोगों

से शिक्षा तथा साहस प्राप्त करते रहो, जो पहले भी इसी प्रकार गतिरोध बनकर आये थे और आपने जिनको विवेकपूर्वक जीत लिया था। किसी का अतीत गतिरोध के बिना पूरा नहीं होता। जीवन-यात्रा में समय-समय पर गतिरोध आना स्वाभाविक होता है। यदि ऐसा न हो तो पुरुषार्थियों के कर्तृत्व का कोई महत्त्व ही न रहे और न मनुष्य में प्रौढ़ता एवं परिपक्वता आए।

पिता ने तो आगे पढ़ाने में विवशता प्रकट कर दी थी, किंतु लाजपत राय को आगे पढ़ने की लगन लगी हुई थी। उन्होंने माता द्वारा पिता को कहलाया कि यदि उनको लाहौर भेज दिया जाये तो वे वहाँ अपने प्रयत्न के आधार पर शिक्षा का प्रबंध कर लेंगे और जो सहायता वे सरलतापूर्वक कर सकें कर दें।

पिता को संदेश मिला। उन्हें अपने बेटे के उत्साह में होनहार के लक्षण दिखाई दिये। उनका हृदय आनंद और गौरव से भर गया, किंतु आश्चर्य भी कम न हुआ। वे सोचने लगे कि यह छोटा-सा लड़का लाहौर जाकर वहाँ पढाई के लिए क्या प्रबंध करेगा ? पहले तो उन्होंने योजना पूछनी चाही। फिर यह सोचकर नहीं पूछा—हो सकता है उसकी योजना किसी श्रम के रूप में हो, जिसे प्रकट करते हुए उसे संकोच हो। उत्साह पर संकोच का आघात किन्ही नवोदित भावनाओं पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं करता। इसलिए उन्होंने इस विषय में अपनी उत्सुकता पर नियंत्रण कर लिया और अपनी सहमति कार्यान्वित कर दी।

लाहौर में बालक लाजपत राय ने एक हाई स्कूल में प्रवेश लिया। प्रवेश में तो कठिनाई होनी ही क्या थीं ? सारी पिछली परीक्षाएँ जिस विद्यार्थी ने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हों, उसे तो कोई भी स्कूल खुशी-खुशी लेने को तैयार हो जाता है। लाजपत राय का पिछला परिश्रम सार्थक हुआ और वे आगे भी उच्च शिक्षा के राजमार्ग पर आ गये, किंतु सबसे बड़ी कठिनाई थी आर्थिक। पढ़ाई और जीवन की अन्य आवश्यकताओं का खर्च कैसे पूरा हो ? पिता से अनुरोध किया नहीं जा सकता था। वह तो लाहौर अपने बल पर अपनी पढ़ाई का वचन करके आये थे। समस्या कुछ कम उलझन

भरी नहीं थी, किंतु आशावादी बालक लाजपत ने उसका हल निकाल ही लिया।

आर्थिक समस्या का यह हल तीन शाखाओं में था—परम मितव्ययता, बच्चों की ट्यूशन और शिक्षा विभाग से छात्रवृत्ति। मितव्ययता के संबंध में उन्होंने यह तक भुला दिया कि सूखी रोटी और दो जोड़े मोटे कपड़ों के अतिरिक्त जीवन की कोई और भी आवश्यकताएँ होती हैं। उनमें भी घाटा पड़ने पर उपवास का लाभ और साहसपूर्वक ऋतु का अनुभव। ट्यूशन तो आप से आप आने लगी, जब उन्होंने अपनी योग्यता का अंश देकर बहुत से कमजोर छात्रों को पढ़ने में तेज बना दिया। अब रही छात्रवृत्ति की बात, सो उसके लिए उन्होंने पूरी तैयारी की और प्रतियोगिता में प्रथम स्थान लेकर शिक्षा-विभाग से छात्रवृत्ति वसूल कर ही ली। इस छोटी-सी उपलब्धि के लिए बालक लाजपत राय ने कितना परिश्रम किया था ? इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि संगी-साथियों की बात तो छोड़ दीजिए, अध्यापक तक कह उठते थे—"लाजपत बेटे ! कभी-कभी घंटा-आध घंटा खेल-कूद भी लिया करो। इस प्रकार पुस्तक रूप हो जाना तुम्हारी आयु के अनुरूप नहीं लगता।" किंतु उन आदरणीयों को क्या पता था कि उस बालक के नन्हें हृदय में एक महापुरुष का निर्माण हो रहा था; जिसकी मूर्तिमत्ता का यह प्रथम चरण था, जो छात्रवृत्ति के लक्ष्य रूप में उसे पूरा ही करना था। पुरुषार्थ की अखंड साधना द्वारा ही तो अंतर के उद्‌भाव्य महापुरुष में प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है।

कुछ दिन लाहौर में पढ़ने के बाद लाजपत राय दिल्ली चले गये। सोचा था कि दिल्ली भारत की राजधानी है, बड़ा नगर है, वहाँ पर रहकर आय में भी कुछ वृद्धि हो जाएगी और राजनीतिक हलचल से परिचय भी रहेगा, किंतु बड़े नगरों में जो सबसे बड़ी कमी रहती है, वह दिल्ली में भी थी। जनसंकुलता के कारण वहाँ का न तो जन-जीवन ही शांत था और न वातावरण ही स्वास्थ्यदायक। लाजपत राय वहाँ बीमार पड़ गये। पहले तो उन्होंने बहुत कोशिश की कि किन्ही उपायों से दिल्ली के जलवायु से उनके स्वास्थ्य का सामंजस्य हो जाये। किंतु जब इसमें सफलता की संभावना न देखी,

तो प्रकृति से व्यर्थ का संघर्ष करना ठीक न समझा और दिल्ली से अपनी माता के पास यह सोचकर चले आए—क़दाचित् इसमें भी किसी शुभ संभावना का रहस्य छिपा हो।

उनकी शिक्षा की लगन ने उन्हें अधिक दिनों तक जरगाँव में नहीं रहने दिया। स्वस्थ होते ही उन्होंने लुधियाना जाकर मिशन हाईस्कूल में प्रवेश ले लिया और अधिकाधिक तन्मयता के साथ पढ़ने लगे, जिससे कि अध्ययन की पिछली क्षति पूरी हो जाये और वे कक्षा में अपना प्रथम स्थान बनाये रहें। स्कूल के अधिकारियों ने उनकी लगन, तत्परता और योग्यता के उपलक्ष्य में छात्रवृत्ति की भी सुविधा दे दी। अपने भाग्य के निर्माण में व्यस्त व्यक्तियों की कठिनाइयाँ तो यों ही प्रत्याशित तथा अप्रत्याशित रूप में हल होती ही रहती हैं।

लेकिन अभी उनके स्थैर्य की घड़ी नहीं आई थी। यहाँ भी बीमार हो गए। अतएव कुछ समय के लिए विद्यालय छोड़ देना पड़ा। इस गतिरोध को भी उन्होंने ईश्वर की किसी बड़ी इच्छा का रहस्य माना और अपने पास न तो कातरता आने दी और न निराशा। बीमारी से संघर्ष करते हुए भी वे बराबर पढ़ते थे। इस प्रकार विद्यालय छूट जाने पर भी उन्होंने शिक्षा की प्रगति न रुकने दी। उन्हें इस बात का ज्ञान था कि संपर्क विच्छेद कर देने से पढ़ी विद्या भी विस्मृत होने लगती है।

उन्हीं दिनों उनके पिता शिमला से अंबाला बदली होकर आये और लाजपत राय अपनी माता तथा भाइयों के साथ पिता के पास अंबाला चले गए, किंतु अभी उनके धैर्य की परीक्षा समाप्त न हुई थी। अंबाला आकर वे फिर बीमार हो गये और अबकी बार उन्हें एक भयंकर फोड़ा निकल आया, किंतु इस स्थिति में भी उन्होंने अध्ययन से मुँह न मोड़ा। इन्ही आपत्ति के दिनों ही उन्होंने एक बंगाली विद्वान् की सहायता से अंग्रेजी और पिता के सहयोग से उर्दू, फ़ारसी और गणित की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। यह शिक्षा के प्रति उनकी लगन का ही प्रमाण था कि कष्ट और संकट के दिनों में भी उन्होंने उसका क्रम टूटने न दिया। जिनको कोई आंतरिक अथवा बाह्य परिस्थिति अपने लक्ष्य की ओर प्रगति करते रहने से विरत कर देती है, उनकी लगन में कमी होती है। ऐसी कच्ची लगन

के लोग एक साधारण से कारण और छोटा-सा बहाना पाकर मंद पड़ जाते हैं और तब न तो कोई बड़ी सफलता पा पाते हैं और न उल्लेखनीय प्रगति ही कर पाते हैं। धैर्य, संयम, पथ्य और उपचार के बल पर लाजपत राय ने अपने स्वास्थ्य को, निरोग होकर जल्दी ही वापस कर लिया और यथासमय मैट्रिक की परीक्षा देकर सफल भी हो गये। सफलता तो तब संदिग्ध होती जब वे बीमारी के समय पराजय मानकर पड़े-पड़े—'अब कैसे-क्या होगा ?' का ताना-बाना बुनते रहते। इसके विपरीत जब वे रोग को भी अन्य गतिरोधों की तरह हेय समझकर उसका उपाय भी करते रहे और अध्ययन का क्रम भी चलाते रहे तो परीक्षा में असफलता की अनहोनी घटना हो भी कैसे सकती थी ? फिर भी उन्हें इस संघर्ष पर विजय पाने में कुछ कम परेशानी न हुई। इसका जिक्र करते हुए उन्होंने स्वयं एक स्थान पर लिखा है—

"यों तो मेरी कठिनाइयाँ और परेशानियाँ जीवन भर मेरे माता-पिता के लिए कष्ट का कारण बनी रहीं, किंतु इस वर्ष जो मुझे और मेरे माता-पिता को कष्ट हुआ, वह मैं आजीवन नहीं भूल सकता।"

मैट्रिक की परीक्षा विशेष अंकों के साथ पास करने से उन्हें जो छात्रवृत्ति की सुविधा मिली, उसके सहारे वे उच्च शिक्षा के लिए लाहौर चले गये तथा अरबी, उर्दू और भौतिक विज्ञान के साथ पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि ग्रहण की, किंतु इससे उन्हें संतोष न हुआ। कारण यह था कि उन दिनों पंजाब विश्वविद्यालय की उपाधि कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण न मानी जाती थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय की डिग्रियों का उन दिनों बहुत मान था। इस अंतर के कारण उन्हें अपना परिश्रम व्यर्थ जाता दिखाई देने लगा। किसी तपस्या की अपर्याप्त सिद्धि यदि थोड़ी-सी तपस्या और मिला देने से पूर्ण और प्रकाम हो सकती है तो धैर्यवान् साधक उससे पीछे नहीं हटते। वे कुछ समय और तपकर ऐसे कुंदन बन जाते हैं, जिसकी प्रतिभा और प्रभा फिर कभी आजीवन मंद नहीं होती।

शिक्षा में अपनी सफलता का असफल रूप देखकर लाजपत राय ने कोई सोच न किया और वे कलकत्ता विश्वविद्यालय की

उपाधि के लिए कृत संकल्प होकर पुनः अध्ययन में जुट गये और इस बार उन्होंने फारसी के साथ उस विश्वविद्यालय का स्नातकत्व प्राप्त कर लिया। महान् का संपर्क मध्यम को भी महान् बना देता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय की उपाधि मिलते ही उनकी पिछली डिग्री का महत्त्व बढ़ गया और लाला लाजपत राय एक-एक ग्यारह की तरह उन दोनों डिग्रियों से विशेष गुरुतायुक्त हो गये। इस तपस्या में तन्मयता के कारण असावधान लाजपत राय पर रोग ने एक बार फिर आक्रमण कर दिया। इस बार की बीमारी से उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। वे सोचने लगे यदि इसी प्रकार रोगों का शत्रु आगे भी उनके पीछे पड़ा रहा तो वे भविष्य के मनोनीत कर्तव्य किस प्रकार पूरे कर सकेंगे ? अंततः उन्होंने एक दिन अपने जीवनक्रम का आमूल संपादन कर डाला। कमियों, त्रुटियों और कृत्रिमताओं को निकाल फेंकने के साथ-साथ कठोर संयम, नियमित दिनचर्या और युक्ताहार विहार की ऊँची और अटूट प्राचीर से अपने स्वास्थ्य की किलेबंदी कर दी, जिसके फलस्वरूप उनका आरोग्य अपने शत्रु रोगों से सदा-सर्वदा के लिए निर्द्वंद्व हो गया।

अब लाला लाजपत राय शिक्षा के उस परिवेश में आ गये थे, जहाँ से वे अपने लक्ष्य वकालत की ओर अभियान कर सकते थे। उन्होंने लॉ-विद्यालय में प्रवेश ले तो लिया, किंतु अर्थाभाव के कारण लॉ की डिग्री लोहे के चनों से कम कड़ी सिद्ध न हुई। उनकी शिक्षा का यह अंतिम दौर मानो उनके धैर्य, पुरुषार्थ और कष्ट सहिष्णुता की अंतिम परीक्षा थी। उन्होंने इस समादृत सफलता को किस दरिद्रता का सामना करते हुए प्राप्त किया, उसका परिचय उनके लिए इस विवरण से ही मिल जाता—उन्होंने लिखा है—

"लॉ कॉलेज के मेरे प्रारंभिक दो-तीन माह तो असहनीय कठिनाई में बीते। इन दिनों मेरी आँखों ने मुझे बड़ा कष्ट दिया। भोजन का अभाव तो जब-तब बना ही रहता था, जिसे दिन भर पानी पी-पीकर कर पूरा करने का प्रयत्न किया करता था। दिन भर भूखा रहकर रात को भूखे सो जाने का तो जैसे मैं आदी हो गया था। मेरी पुस्तकें मेरी क्षुधा की बहुत कुछ बहलाए रहती थीं।"

"भोजन का अभाव मेरी चिंता का उतना बड़ा विषय नहीं था, जितनी कि चिंता मुझे कॉलेज की फीस और छात्रावास के शुल्क की थी। न तो ट्यूशन मिल रही थी और न उनके लिए समय ही मिल पाता था। वकालत का पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए मेरा एक-एक क्षण जरूरी था। कई माह प्रयत्न और खोज करने के बाद एक मार्ग मिल पाता था। वह था विद्यालय की मात्र छह रुपये मासिक की छोटी-सी छात्रवृत्ति। मेरे लिए उस समय यह छोटी-सी धनराशि भी बहुत बड़ी चीज थी। वह भी सरलता से न मिल सकी। उसके लिए मुझे इतना बड़ा संघर्ष और प्रयत्न करना पड़ा, जितना कोई एक खजाने के लिए न करता। किंतु इसके सिवाय अन्य उपाय भी तो न था। उस समय वह छोटी-सी धनराशि मेरे जीवन लक्ष्य का आधार होने के कारण, मेरे लिए बड़ी मूल्यवान थी। यदि उस संक्रांति समय में, मैं उस समय प्रयत्न और प्राप्ति के अनुपात की तुलना करने की भावुकता में आ जाता तो निश्चय ही एक बड़ी भूल हो जाती। अतएव मैंने प्रयत्न के एक बड़े मूल्य पर वह छोटी-सी धनराशि उत्साहपूर्वक प्राप्त कर ली। बड़ी प्रसन्नता हुई।"

"उस छात्रवृत्ति में से दो रुपये कॉलेज की फीस देता था, तीन रुपये वकालत का शुल्क और एक रुपया छात्रावास का निवास शुल्क। अब मेरे भोजन तथा अन्य खर्चे के लिए मेरे पास केवल एक रुपया बचता था, जिसके सहारे में अपना शेष जीवन चलाने की कोशिश करता था।"

"मेरे न बतलाने पर भी पता नहीं मेरे पिताजी को मेरी इस कठिनाई का पता कैसे चल गया ? उन्होंने अपनी परिवार की कठिनाइयाँ बढ़ाकर मेरी कठिनाई में हाथ बँटाया। वे मुझे मासिक कभी आठ रुपये और कभी दस रुपये भेजा करते थे। मैंने अपने लिए उनका यह उपकार बहुत समझा। इससे अधिक कुछ कर सकना उनके लिए संभव न था। मुझे उसी सीमा में रहकर अपना गुजर करना पड़ा था और मैंने साहसपूर्वक किया भी। वकालत की पुस्तकें बहुत महँगी थी, किंतु मैंने दौड़-धूप कर कुछ आवश्यक पुस्तकें सस्ते दामों में प्राप्त कर लीं थी। इस प्रकार जहाँ लॉ के अन्य छात्र अपने कमरों में नई-नई पुस्तकों की एक छोटी-मोटी

लायब्रेरी रखते थे, वहाँ थोड़ी-सी पुरानी पुस्तकों से ही काम चलता था। इसके अतिरिक्त जिन पुस्तकों की आवश्यकता होती थी और जो मेरे पास नहीं होती थीं, उन्हें मैं अपने मित्रों से माँग लाता था और बड़ी सावधानी से काम निकालकर निर्धारित समय पर वापस कर आता था। मैंने न तो किसी मित्र की कोई पुस्तक कभी खराब की, न समय के बाद अपने पास रोकी। जिस प्रकार मैं स्वयं ही पुस्तकें ले आता था, उसी प्रकार खुद जाकर सधन्यवाद वापस भी कर आता।"

"मेरे पिता मेरे लिए ऋण लेने को भी तैयार हुए, लेकिन मैंने उन्हें ऐसा करने नहीं दिया और सीमांत मितव्ययता के साथ अपना गुजारा करता रहा। किंतु मेरी इन सारी मुसीबतों का सारा मूल्य मुझे एक साथ मिल गया, जब मैं वकालत की परीक्षा में मनभाये अंकों से पास हो गया।"

इस जीवन-निर्माण की कठोर गाथा के बाद लाला लाजपत राय की सेवाओं का इतिहास प्रारंभ होता है। रोहतक में वकालत प्रारंभ करने के साथ ही उन्होंने लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज का काम भी करना शुरू कर दिया। कॉलेज नया-नया ही स्थापित हुआ था। उसके स्थायित्व और विकास के लिए बहुत काम करना था। उन दिनों निःस्वार्थ एवं निःशुल्क कार्यकर्ताओं की बड़ी कमी थी। लाला लाजपत राय ने कॉलेज को अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। वे प्रायः कचहरी के बाद रोहतक से लाहौर चले जाया करते थे। वहाँ जाकर कॉलेज का काम और कागज देखते थे। अपने प्रस्ताव देते और अगली योजनाओं पर विचार-विमर्श करते थे। अवसर मिलने पर वे एक-दो कक्षाओं को या तो कोई महत्त्वपूर्ण विषय पढ़ाते थे या नैतिकता, आचरण, अनुशासन, जन-सेवा और देश-भक्ति के प्रेरक उपदेश दिया करते थे।

अवकाश के दिनों में तो लाला लाजपत राय लाहौर में ही रहते थे और सारे समय कॉलेज के काम में ही लगे रहते थे। उन दिनों उनका मुख्य कार्य कॉलेज के लिए धन-संग्रह करना रहता था, वे कॉलेज के लिए झोली लिए बाजार-बाजार, दुकान-दुकान और घर-घर घूमते थे। लोगों की शिक्षा की आवश्यकता और महत्त्व

समझाते थे। कॉलेज का उद्देश्य और उसके विकास की अनिवार्यता बतलाते थे। विनम्रतापूर्वक लोगों से दान देने की प्रार्थना करते थे। बच्चों को स्कूल भेजने की प्रेरणा देते थे और और जो कुछ मिलता था, उसे लाकर कॉलेज को भेंट कर देते थे। इस प्रकार प्रयत्नों द्वारा लाला लाजपत राय ने लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज को हजारों रुपये और सैकड़ों छात्र ही नहीं दिये, बल्कि अपनी प्रतिष्ठापूर्ण याचना से उसका महत्त्व भी बढ़ा दिया। जिन जनकार्यों के लिए सम्मानित व्यक्ति अहंकारजन्य आत्महीनता का भाव छोड़कर झोली ले लेते हैं, उन कल्याण कार्यों को सफल होते विलंब नहीं लगता। लाला लाजपत राय की इस बहुमूल्य सेवा से कॉलेज कुछ ही समय में अपने पैरों खड़ा हो गया और उनको सहारा देने वाले उन जैसे ही बहुत-से स्तंभ भी मिल गये।

इस सक्रिय सेवा के अतिरिक्त लाला लाजपत राय जनता में विचार आंदोलन के लिए विविध पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी लिखते रहते थे। परिवर्तनकारी लेखों ने लाहौर में जन-जागरण का प्रभात उदय कर दिया। लाला लाजपत राय की उत्पन्न की हुई इस हलचल ने जहाँ उन्हें जनप्रिय बना दिया, वहाँ सरकारी अधिकारियों को असहयोगी। परिणामस्वरूप उनकी वकालत मंद पड़ती गई। सरकार के पिट्ठु अफसरों का असहयोग इतना बढ़ गया कि उन्हें जीविका के लिए रोहतक छोड़ देने का विचार करना पड़ा। इसको भी उन्होंने अपनी एक सफलता ही माना। जन-सेवाओं का महत्त्व और जन-सेवक का प्रभाव प्रायः प्रारंभ में विरोध की तुला पर ही तुलकर अपना मूल्य प्रकट करता है। यद्यपि कॉलेज में उन्हें आर्थिक सहायता देने का प्रस्ताव किया, किंतु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया और कहा—"किसी जनसंस्था को सहायता दी जाती है या उल्टे उससे सहायता ली जाती है। सेवा एवं साधन का क्षेत्र एक रोहतक ही तो नहीं है। पूरा देश पड़ा है। कहीं भी चला जाऊँगा।" अंततोगत्वा वे रोहतक से हिसार चले आये।

हिसार में आकर लाला लाजपत राय ने जल्दी ही जन-सेवा का क्षेत्र खोज निकाला, उन्हें पता चला कि म्युनिसिपेलिटी में मंत्री स्थान रिक्त है, जिसके कारण उनका काम सुचारु रूप से नहीं हो

पा रहा है। उन्होंने तत्काल अपनी अवैतनिक सेवाएँ उस स्थान के लिए समर्पित कर दी। उनके अनेक मित्रों ने उनसे कहा जब वह स्थान वैतनिक है, तो आप नियमित वेतन क्यों नहीं लेते ? मित्रों का परामर्श सुनकर लाला जी हँस उठते थे और कहा करते थे कि, मैं उस स्थान पर जन-सेवा के लोभ से गया हूँ, पैसे के लोभ से नहीं। पैसे की अधिक लिप्सा अच्छी नहीं होती। यह मनुष्य को हर दर्जे का स्वार्थी बना देती है। स्वार्थी व्यक्ति समाज का स्वाभाविक विरोधी होता है। मैं समाज का विरोधी नहीं, हितैषी बनना चाहता हूँ और परामर्श देता हूँ कि आप लोग भी स्वार्थ की सीमा कुछ कम करके समाज की सेवा करें, जिससे कि समाज उन्नति और देश स्वाधीनता की ओर बढ़े। उनके इस परामर्श और उस कार्य का अनेक अच्छे आदमियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा, उन्होंने अपना सुधार किया, जन-सेवा की ओर अग्रसर हुए और उसके अभूतपूर्व आनंद के लिए लाला जी को धन्यवाद दिया।

लाला जी ने बहुत समय तक म्युनिसिपेलिटी के मंत्री पद पर काम किया और इस अवधि में नगर के अनेक सुधार कराये। नगर की स्वच्छता और छोटी शिक्षा संस्थाओं की सहायता को उन्होंने स्थायित्व दिलाया। चुंगी-चौकियों पर होने वाले भ्रष्टाचार को रोका और कर्मचारियों के लिए अनेक सुधारों का प्रयत्न किया। उन्होंने इस प्रकार म्युनिसेपिलिटी के एक आदर्श मंत्री का उदाहरण लोगों के सम्मुख रक्खा।

लाला जी अपने कर्तव्य में किस सीमा तक निःस्वार्थ और निस्पृह थे, इसका प्रमाण इसी बात से मिलता है कि उन्होंने अवसर होने पर भी अपने पद और प्रभाव के आधार पर सस्ती जमीन-जायदाद का लाभ नहीं उठाया, जबकि न जाने कितने निवासरहित परिवारों को स्थान-स्थान पर चुंगी की जमीन पर मकान बना लेने की अनुमति दिलवाई और किराया भी नाम-मात्र का स्वीकृत करा दिया। उनके संबंधियों ने उनसे उस अवसर पर अपने पद का लाभ उठाने के लिए कहा और अपने लिए भी सस्ते दामों पर बड़े-बड़े प्लाट चाहे। किंतु लाला जी स्वयं तो लाभ में नहीं ही आये एवं अवसरवादी संबंधियों को भी अनुचित लाभ नहीं उठाने दिया। इस

निस्पृहता और ईमानदारी के लिए लोगों के कोप के साथ मूर्ख की उपाधि भी मिली, जिसे उन्होंने निर्विकार भाव से स्वीकार कर लिया। बाद में जब लाला लाजपत राय की सेवा-भावना और देश-भक्ति सर्वथा प्रमाणित हो गई तो स्वार्थी लोगों को अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप हुआ।

अपनी इन सेवाओं और सद्भावनाओं के कारण लाला जी हिसार में बड़े लोकप्रिय हो गये। लोग उन्हें स्वभावतः अपना नेता मानने लगे। लाला जी ने अपनी इस नेतृत्वपूर्ण लोकप्रियता का लाभ उठाया, किंतु अपने लिए नहीं, जन-हित के कार्यों के लिए। उन्होंने अपने समर्थकों की अनेक सभाएँ कीं, जिनमें लोगों का ध्यान अनाथों की दशा की ओर आकर्षित किया और उनके लिए एक अनाथालय और एक उद्योग स्थापित करने का प्रस्ताव रखा। जनता ने उनके इस प्रस्ताव का केवल समर्थन ही नहीं किया बल्कि हाथों-हाथ उसे कार्यान्वित भी कर दिया। जल्दी ही उसके लिए समिति गठित हो गई, एक कोष स्थापित हो गया, जमीन चुन ली गई और उद्योग का सरंजाम जुटने लगा।

अनाथालय और अनाथों के लिए उद्योग की स्थापना ने समाज के न जाने कितने लोगों को आश्रय दिया। उनके तन-पेट का जब पालन होने लगा तो उनकी दुःखी आत्माओं ने सुखी होकर लाला जी को जो मौन आशीष दिया होगा, उसका फल सौ साल की साधना से भी अधिक रहा होगा। कौन कह सकता है कि लाला जी के आगामी यशस्वी कामों की प्रेरणा और सफलता में अनाथों की मौन आत्माओं का योगदान न रहा हो ? परमार्थ के इस रहस्य को तो कोई उपकारी ही जान सकता है।

हिसार में वे अभी जन-कल्याण की बहुत-सी योजनाओं को कार्यान्वित करने के विषय में विचार कर रहे थे कि लाहौर की अनिवार्य आवश्यकताओं ने उन्हें फिर वहाँ बुला लिया। उनका पोषित डी० ए० वी० कॉलेज अव्यवस्था के कारण प्रगति से वंचित हो रहा था। उसके आधार आर्य-समाज में फूट पड़ जाने से जनहित की बड़ी हानि हो रही थी और लाहौर का जन जागरण एक सच्चे

नेता की माँग कर रहा था। यह थीं वे अनिवार्य आवश्यकताएँ जिनके कारण हिसार छोड़कर उन्हें पुनः लाहौर जाना पड़ा।

जाते-जाते उन्होंने सबसे पहले कॉलेज-कमेटी का मंत्रि-पद का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लिया। समिति की सम्मति और कॉलेज की व्यवस्था के लिए उन्होंने दिन और रात एक कर दिया। इसके लिए उन्हें जिसके पास जितनी बार जाना पड़ा, वे गये, जिनकी खुशामद, मिन्नत करनी पड़ी की और जो भी परिश्रम करना पड़ा, किया। इस सदाशयता के लिए उन्होंने स्वाभिमान, संकोच, पद और प्रतिष्ठा के सारे अलंकार उतारकर रख दिए थे और यह सिद्ध कर दिया था कि जन-सेवक का स्थान जनता जनार्दन के पैरों के पास होता है और नेतृत्व की सार्थकता सहनशीलता तथा विनम्रता में है।

खंडित आर्य-समाज को अखंड करने के लिए उन्होंने कितना प्रयत्न और सदस्यों की बैठकों के साथ-साथ सार्वजनिक सभाएँ की इसकी कोई गणना नहीं है। सभाओं में लालाजी के सारपूर्ण भाषणों का बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा, जिससे आर्य-समाज की दशा सुधार की दिशा में गतिमान् होने लगी। उनके इन भाषणों का सारांश कुछ इस प्रकार का होता था—

"स्वामी दयानंद की आत्मा का सच्चा स्वरूप जिसे हम सब आर्य-समाज कहते हैं, उन ईंट-पत्थरों का नाम नहीं है, जिन पर आप लोग झगड़ा करते हैं। आर्य समाज उन वैदिक सिद्धांतों का नाम है, जिनमें भारतीय समाज का जीवन सन्निहित है। हम सब जनता की सेवा और अपने जीवन का सुधार करने के लिए इसमें सम्मिलित हुए हैं। इन मकानों पर अधिकार करने के लिए नहीं और न उनके लिए लड़ाई-झगड़ा करने के लिए। इन सब बातों से स्वामी दयानंद की आत्मा को कितना दुःख होता होगा और जनता की कितने हानि होती है, क्या आप लोगों को इसका विचार कभी नहीं आता ? यह बात ठीक है कि आप लोगों ने काफी धन और समय लगाकर समाज-मंदिर का निर्माण कराया है। फिर भी इस पर झगड़ा करना और पुलिस, अदालत का सहारा लेना समाज के महान् उद्देश्य के सर्वथा प्रतिकूल है। मुझे इस प्रकार के अधार्मिक और

सिद्धांतघाती आचरण जरा भी पसंद नहीं है। मेरा आप लोगों से विनम्र आवेदन है कि इन आपसी झगड़ों को छोड़कर जन-सेवा की ओर ध्यान दें, जिससे कि आर्य-समाज के पावन उद्देश्य पूरे हो सकें।"

लाला जी के प्रयत्नों के फलस्वप कॉलेज कमेटी और आर्य-समाज के सदस्यों में टूट-फूट के तत्त्व कम हुए। आगे चलकर जनमत के दबाव से उन्हें दो संस्थाओं का सभापतित्व भी वहन करना पड़ा। इन महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को निभाते हुए लाला जी 'दयानंद-ऐंग्लो-वैदिक कॉलेज समाचार' नामक समाचार पत्र का संपादन भी करते थे और 'भारत-सुधार' तथा 'आर्य-मेसेंजर' नामक समाचार-पत्रों का कार्य भी देखते थे। उनके लिए लेख लिखते और प्रकाशन का प्रबंध भी करते थे। इस जन-सेवा की वेदी पर उन्होंने जो व्यक्तिगत त्याग किया था, उसके लिए वे निश्चय ही नमस्कार के योग्य माने जा सकते हैं। हिसार से जिस समय वे लाहौर के लिए रवाना हुए थे, उस समय उनका वकालत की मासिक आय हजार रुपये से दो हजार रुपये तक थी। लाहौर में आकर वे जन-सेवा के कार्यों में इस सीमा तक संलग्न हो गए कि वकालत के लिए उस सीमा तक ही समय एवं ध्यान देते थे, जिससे कि उनकी अपनी जीविका चलती रहे और परिवार को थोड़ी-बहुत सहायता मिलती रहे। जनसेवा के सम्मुख उनकी दृष्टि में धन का कोई महत्त्व ही न रह गया।

लाला लाजपत राय को दुबारा लाहौर आये अभी ज्यादा समय नहीं हुआ था। अभी उनके लोक-सेवाओं का कार्य-क्षेत्र पंजाब के कुछ जिलों तक ही फैल पाया था, किंतु उन्नीसवीं शती के अंतिम तीन-चार वर्षों की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं ने उनका सेवा-क्षेत्र कई प्रांतों तक बढ़ा दिया। सन् १८६६-६७ में लगभग पूरे भारत में सूखा पड़ गया, जिसने दुर्भिक्ष के रूप मे सारे देश में त्राहि-त्राहि मचा दी। लोग उससे छूटने के उपायों में ठीक से लग भी न पाये थे कि तब तक प्लेग फूट पड़ी। प्रकृति के इस तिहरे प्रकोप से प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। जनता और जन-नेताओं की कौन कहे, सरकार तक के हाथ-पाँव फूल गये। ऐसे भयानक समय में लाला लाजपत

राय ने जिस साहस, तत्परता और जन-सेवा की भावनाओं का प्रमाण दिया, उससे देश की जनता ने उन्हें सिर-आँखों पर उठा लिया।

लाला लाजपत राय तुरंत लाहौर छोड़कर अनावृष्टि, अकाल और महामारी से पीड़ित क्षेत्रों के दौरे पर निकल पड़े। उन्होंने आपत्तिग्रस्त जनता की जो दशा देखी वह बड़ी हृदय-विदारक थी। उन्होंने देखा कि प्लेग से प्रभावित लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मर रहे हैं। लोग भय से गाँव-छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। परिवार के लोग तक अपने रोगियों के पास नहीं जाते। न कहीं दवा का प्रबंध है और न रोगियों की परिचर्या का प्रबंध। एक बड़ा समूह अनाथों और निराश्रितों की तरह मर रहा है। क्षेत्रों में श्मशानों जैसा दृश्य उपस्थित हो गया है।

इधर अनावृष्टि जन्य अकाल से भी हजारों आदमी दाने-दाने को तरस कर अकाल मृत्यु मर रहे हैं। लोगों ने पेड़ों के पत्ते और छालों तक को खा डाला है। इतना ही नहीं, उन्होंने यह तक देखा कि भोजन पाने के लिए लोग अपने बच्चों और स्त्रियों तक को बेच रहे हैं। क्षुधा-पीड़ित नारियाँ अपनी विभुक्षा से विवश होकर शील तक दे डालने पर उतर आई हैं। समाज की यह दशा देखकर लाला लाजपत राय आँसुओं से रो उठे, किंतु उससे भी अधिक दुःख उन्हें यह देखकर हुआ कि उसी समाज में ऐसे नर-पशु भी थे, जो मनुष्यों की उस पीड़ा से लाभ उठा रहे थे।

ईसाई मिशनरी भूखी जनता को थोड़ा-सा भोजन देकर उनका धर्म परिवर्तन कर रहे थे। भ्रष्टाचारी, कालाबाजारिये और मुनाफाखोर भयंकर रूप से उस भूखी जनता का खून चूस रहे थे। जहाँ उन्हें उस समय अन्न और धन के भंडार जनता के लिए बिना किसी मूल्य-मुआवजे के खोल देने चाहिए थे, वहाँ वे एक के दस-दस बना रहे थे। थोड़े-से भोजन और कुछ सिक्कों पर नर-पिशाच विवश नारियों के शील का सौदा कर रहे थे। मानवता पर इस प्रकार का अमानवीय अत्याचार देखकर लाला लाजपत राय का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। उन्होंने उस आपत्तिग्रस्त जनता की सहायता में अपने प्राण तक दे देने का संकल्प कर लिया।

उन्होंने अकाल-पीड़ित क्षेत्रों अंधाधुंध दौरे करने शुरू कर दिये। यदि उनका सूरज एक स्थान पर निकलता था तो शाम दूसरे स्थान पर होती थी। अपने इन दौरों में वे पीड़ित तथा रोगी जनों के पास जाकर उन्हें आश्वासन देते थे, उनके दुःख में सहानुभूति की शीतलता भरते थे। अनाथ स्त्री-बच्चों को उनके करुणा भरे आँसुओं ने बड़ा धीरज बँधाया।

पीड़ितों के पास से वे जनता में आकर सभाएँ करते थे। अन्न, वस्त्र और धन-जन के लिए अपीलें निकालते थे। समाचार-पत्रों में सहायता के लिए प्रेरणा देने वाले लेख लिखते थे। साथ ही वे अकाल और आपत्ति से लाभ उठाने वाले नर-पिशाचों की निंदा और आलोचना भी करते थे। वे कहते थे—"धिक्कार है ऐसे मनुष्यों को, घोर धिक्कार है, जो ऐसे अपत्तिकाल में सहायता करना तो दूर, उल्टे पीड़ित लोगों का शोषण करते हैं। इस दुर्भाग्य को सुअवसर समझकर मनमाना मुनाफा करते हैं। याद रखो तुम पाप की जिस कमाई को जमा कर-करके रख रहे हो, वह सब एक दिन यहीं पर छूट जायेगी, लेकिन तुम्हारा पाप तुम्हारे साथ परलोक में जायेगा और तुम्हारे लिए रौरव नरक का कारण बनेगा। यह सब अपने पीड़ित भाइयों से मुनाफा कमाने का फल है। यह समय तो अपने भंडार, अपने हृदय और अपनी मनुष्यता को उदारतापूर्वक खोल देने का है। यह समय अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा और कामों तक को छोड़कर दुःखी लोगों की सेवा करने का है। धिक्कार है उन नर रूपी पशुओं को जो आपत्तिग्रस्त देशवासियों की उपेक्षा कर अपने मौज-मजे में लगे हुए हैं।"

असहयोगिनी जनता के साथ-साथ लाला लाजपत राय ने देश की सरकार और देश के नेताओं को कम आड़े हाथों नहीं लिया। उन्होंने उनकी किंकर्तव्यविमूढ़ता से उत्पन्न निष्क्रियता को एक बड़ी कमजोरी बताया और कहा—"इस समय निराशा अथवा निरुत्साह को प्रश्रय देकर न तो बैठे रहने से काम चलेगा और न केवल प्रस्ताव पास करने और सहानुभूतिपूर्ण लेख लिखने से। इस समय मनुष्यता आपत्ति में फँसी है। इस समय मैदान में आकर उसकी सक्रिय सहायता एवं सेवा करने की आवश्यकता है। धनवान्,

बलवान्, स्त्री, पुरुष, शिक्षित, अशिक्षित, साधु, संन्यासी, नागरिक, ग्रामीण, शिक्षक, विद्यार्थी, साधारण-असाधारण जो भी स्वामी-सेवक, नेता और अनुयायी इस समय भगवान् की कृपा से, प्रकृति के इस प्रकोप से सुरक्षित हैं, सब जाति, वर्ण, धर्म, संप्रदाय, वर्ग और श्रेणी का विचार छोड़कर मरती मानवता की रक्षा के लिए अपने-अपने साधन लेकर चल पड़ें और सहायता एवं सेवा कार्यों में लग जायें। सरकार को चाहिए कि वह भी अन्य सारे कार्यों को गौण करके पीड़ित प्रजा की रक्षा के लिए जनता का साथ दें और शासक होने का अपना कर्तव्य पालन करें।" लालाजी की इन प्रेरक मार्मिक अपीलों ने देश भर में एक हलचल खड़ी कर दी। हृदय से निकली हुई उनकी बातें सीधे लोगों के हृदय पर चोट करती थीं। सोते हुए लोगों में जागरण का वातावरण छा गया और उनकी मनुष्यता अपने भाइयों की सेवा-सहायता करने के लिए मचल उठी।

लाला जी ने इस प्रकार जनता को जगाकर स्थान-स्थान पर जन-सेवा समितियों का गठन किया। हजारों की संख्या में स्वयं-सेवक तैयार किये। आगरा, लखनऊ, सीतापुर, गोंडा, मिर्जापुर, इलाहाबाद आदि अकालग्रस्त क्षेत्रों के मध्य स्थानों में केंद्रीय कमेटियाँ और बड़े-बड़े सहायता-शिविर स्थापित किये। डॉक्टर, नर्सों और परिचारिकाओं का भी प्रबंध किया। उन्होंने न केवल सैकड़ों स्वयं-सेवक ही सहायता संचय करने के देश भर में भेजे बल्कि स्वयं भी झोली डालकर निकल पड़े। लालाजी जहाँ भी जाते थे, वहीं से हजारों रुपये और मनों सामग्री की व्यवस्था कर लाते थे। उन्होंने अपने प्रयत्नों से अन्न, वस्त्र और उपकरणों के ढेर के ढेर इकट्ठे कर दिये। वे स्वयं सेवकों को साथ लेकर स्वयं पीड़ितों के पास जाते थे और अपने सामने उन्हें सहायता दिलाते थे। बीमारों की स्वयं अपने हाथ से परिचर्या करते और मृत लोगों को ठिकाने लगाते थे।

लालाजी की इस तत्परता और सेवा-भावना का फल यह हुआ कि न केवल देश के कोने-कोने से बल्कि विदेशों से भी अकाल-पीड़ितों के लिए सहायता-सामग्री आने लगी। पं० मदनमोहन मालवीय और गोखले जैसे चोटी के नेता भी जन-सेवा के क्षेत्र में

सक्रिय रूप से उतर आये और उन्होंने लाला जी का नेतृत्व खुशी-खुशी स्वीकार किया, किंतु देश की विदेशी सरकार अभी तक अपने कर्तव्य में उदासीनता बरत रही थी। लालाजी उसकी यह कर्तव्यहीनता सहन न कर सके। उन्होंने अपने लेखों और भाषणों में उस पर कठोर आघात करने शुरू कर दिये। सरकार की आँखें खुली और उसने सबसे पहला काम यह किया कि रेलगाड़ी से आने वाली सहायता-सामग्री का भाड़ा आधा कर दिया। अनंतर उसने अकाल की जाँच और सहायता का सुझाव देने के लिए एक कमीशन स्थापित किया। कमीशन की रिपोर्टों में लाला जी ने अपनी योजनाओं का समावेश कराया और सरकार से हर प्रकार की सहायता प्राप्त की। इस प्रकार अपने अथक परिश्रम द्वारा लाला लाजपत राय ने आपत्ति पीड़ित जनता की जो अभूतपूर्व सेवा की वह मानवता के इतिहास में आदरपूर्ण अक्षरों में लिखी रहेगी। इन दिन-रात के सेवा-कार्यों में लाला जी न केवल अपने हजारों रुपये की आय का ही उत्सर्ग कर दिया बल्कि स्वास्थ्य का भी एक बहुत बड़ा भाग बलिदान कर दिया। स्वास्थ्य की हानि पर खेद प्रकट करने वालों से लाला जी ने संतोषपूर्वक यही कहा—"अपनी थोड़ी-सी शारीरिक अथवा आर्थिक हानि करके यदि पीड़ित मानवता की सेवा की जा सकती है तो मैं इसे सस्ता सौदा ही समझता हूँ। यदि इस परमार्थ में मेरे प्राण भी चले जाते तब भी मैं अपने को धन्य ही मानता।"

मानवता के ऊपर आई आपत्ति से अभी युद्ध किए लाला जी को कुछ भी समय न गुजरा था कि १८९६ में राजस्थान में पुनः अकाल पड़ गया। मित्रों, परिजनों तथा संबंधियों ने बहुत कुछ समझाया और चाहा कि अब लाला जी उस विकट परिस्थिति में न पड़ें और दूसरे लोगों को सेवा करने दें, किंतु मानवता के सच्चे पुजारी लाला जी न माने, पहले की तरह ही पुनः सेवा क्षेत्र में कूद पड़े। हितैषीजनों के विरोध का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"जन सेवा के कार्यों में बाटी और पाटी का दृष्टिकोण रखना किसी जन-सेवक के लिए एक बड़े अधर्म से कम नहीं है। मैंने कितना किया और लोग कितना कर रहे हैं ? आपत्तिकाल में इसकी नाप-तौल करना एक अहंकार पूर्ण प्रवंचना है। मेरा विश्वास है कि

जो व्यक्ति सेवाओं का परिणाम लिए बिना जितनी अधिक जन-सेवा कर लेता है, वह उतना ही बड़ी परमार्थी और उसका जीवन उतना ही अधिक सार्थक होता है।"

इस बार भी लाला जी ने राजस्थान के अकालपीड़ितों की सेवा उसी तत्परता और उसी उत्साह से की जिस तत्परता से पहले की थी, उनकी इन सेवाओं की प्रशंसा न केवल देश के बड़े-बड़े नेताओं ने की, प्रत्युत पंजाब सरकार ने उन्हें एक सच्चा जन-सेवक माना। यहाँ तक कि जब भारत सरकार ने अकाल के कारणों की जाँच करने के 'दुर्भिक्ष-कमीशन' स्थापित किया तो लाला जी को उसके सम्मुख सबसे बड़ा साक्षी माना।

राजपूताने के दुर्भिक्ष से निपटकर लाला लाजपत राय ने लाहौर में एक स्थायी सेवा-समिति की स्थापना की। उसमें उन्होंने स्वयं-सेवकों को आपत्तिग्रस्त मानवता की सेवा करने की विधियों का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की। एक स्थायी सेवा-कोष की स्थापना के साथ-साथ अनेक अनाथालय और आश्रमगृहों की भी स्थापना कराई। संकटकाल में धर्म रक्षा के लिए ईसाइयों की साल्वेशन आर्मी (मुक्ति सेना) की तरह एक धर्म-रक्षक सेना का संगठन किया।

दैवयोग से, दूरदर्शी लाला लाजपत राय की इन संस्थापनाओं तथा संगठन की समर्थता जल्दी ही सिद्ध हो गई। राजपूताना के अकाल के पाँच-छह साल बाद ही कांगड़ा जिले में भयंकर भूकंप आ गया, जिसमें सैकड़ों मकान गिर गये, सैकड़ों आदमी मर गये और न जाने कितने परिवार बेघरबार हो गये। लाला लाजपत राय तुरंत अपनी पूर्व व्यवस्था के आधार पर भूकंप पीड़ितों की सेवा में जुट गये। उन्होंने पुनः सहायता-संचय का अभियान चलाया। अन्न-वस्त्र और धन इकट्ठा किया। स्वयं-सेवकों का आह्वान किया और भूकंप से ध्वस्त भू-भाग के पुनः निर्माण में लग गये। उन्होंने अनाथों एवं निराश्रितों को अनाथालयों और आश्रमगृहों में स्थान दिया। सैकड़ों तंबू और झोंपड़ियों की व्यवस्था की। गरीब और निरुपाय लोगों के लिए लंगर चलवाए। इस प्रकार उन्होंने जल्दी भूकंप पीड़ित लोगों की स्थिरता और आत्म-विश्वास की स्थिति पैदा कर उनका बड़ा उपकार किया।

इसी प्रकार जब १९०७-८ में उड़ीसा, संयुक्त प्रांत और मध्यप्रदेश में अकाल पड़ा, तो उस समय भी सेवा-कार्यों में लाला जी सबसे आगे रहे। लाला जी की इस महान् मानवता ने उन्हें इक्कीस-बाईस साल की आयु में ही देश के बड़े-बड़े नेताओं की पंक्ति में खडा कर दिया। देश भर में स्थान-स्थान पर उनका स्वागत हुआ, मान-पत्र और थैलियाँ भेंट की गई, उसको उन्होंने जन-सेवा के कार्यों में ही लगा दिया। वे पंजाब आर्य-समाज के सभापति बनाये गए और भारत सरकार द्वारा देश के प्रमुख जन-नेताओं में स्वीकार किये गए।

अछूतों तथा हरिजनों के प्रति लाला लाजपत राय की सहानुभूति सदैव से रही थी। हिंदुओं के इस वर्ग की दयनीय दशा को वे समाज पर एक कलंक मानते थे और चाहते थे कि उनकी दशा सुधरे एवं वे समाज के एक अच्छे अंग बने। उन दिनों हिंदू समाज के इस वर्ग को अपने-अपने संप्रदाय में मिला लेने के लिए ईसाइयों तथा मुसलमानों, दोनों के प्रयत्न चल रहे थे। ईसाई मिशनरी तो उन्हें उनकी गरीबी, अशिक्षा और अवहेलना से लाभ उठाकर उन्हें ईसाई बनाने में जुटे हुए थे और मुसलमान राजनैतिक आधार पर उन्हें हिंदू-मुसलमानों के बीच आधा-आधा बाँट दिये जाने की पेशकश कर रहे थे। अछूतों के इस निष्कासन एवं विभाजन के पीछे हिंदू-समाज के अस्तित्व के लिए एक भयंकर खतरा छिपा हुआ था। लाला लाजपत राय ने इस खतरे को स्पष्ट अनुभव कर लिया था। उन्होंने संकल्प कर लिया कि वे हिंदू समाज के अस्तित्व के लिए अछूतों के उद्धार और उनकी रक्षा के लिए प्राणपण से प्रयत्न करेंगे। वे ईसाइयों और मुसलमानों के षड्यंत्र को सफल न होने देगें, फिर चाहे इनके लिए उन्हें अपना सर्वस्व ही नहीं, प्राण तक क्यों न देने पड़े। निदान वे आर्य समाज के नेता की हैसियत से हरिजनों के कल्याण के लिए मैदान में उतर आये।

लाला जी ने अछूतोद्धार का काम सबसे पहले पंजाब में प्रारंभ किया। काफी दिन धैर्यपूर्वक प्रचार करने के बाद उन्होंने एक अछूतोद्धार कमेटी स्थापित की। इसका प्रधान भी लोगों ने उन्हीं को बनाया। इस कमेटी के सदस्य जनता को अछूतों की दशा से

परिचित कराते थे और उनकी वर्तमान दशा से होने वाली सामाजिक हानि से परिचित कराते थे। लोगों को अछूतोद्धार कार्यक्रम में शामिल होने और सहायता करने के लिए प्रेरित करते थे। पंजाब की केंद्रीय अछूतोद्धार कमेटी को दृढ़ करने के बाद लाला जी ने उसके विकास और विस्तार के लिए प्रयत्न किया। भारत के विभिन्न क्षेत्र में उसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ स्थापित कीं और उनका संबंध मूल कमेटी से जोड़कर उसे अखिल भारतीय रूप दे दिया।

वे अछूत-सुधार का प्रचार करने के लिए कमेटी के सदस्यों को बाहर भेजते थे। उनके लिए सारी व्यवस्था करने के लिए जनता से साधन एकत्र करते थे और आवश्यक निर्देश देते रहते थे। लाला लाजपत राय ने ऊँच-नीच और छूआछूत में विश्वास रखने वाले हिंदुओं की आँखें खोलने के लिए भारत के बहुत से भागों का दौरा किया। विशेषतौर से वे इस प्रचार के लिए वाराणसी, इलाहाबाद, बरेली और मुरादाबाद तथा अधिक पिछड़े स्थानों पर गए। वहाँ उन्होंने लोगों को धर्म का सच्चा स्वरूप बतलाया और अपनी भावनाओं में सुधार करने की प्रेरणा की।

उन्होंने एक सुधरी हुई अछूत बस्ती के लिए दिल्ली में एक योजना चलाई और उसके लिए शहर के शाहदरा विभाग में जमीन का टुकड़ा भी खरीदा। लगभग सारे देश के प्रचार करने के बाद लाला जी ने गुरुकुल कांगड़ी में एक अखिल भारतीय अछूत-सम्मेलन किया और उसके अध्यक्ष पद से बड़ा ही मार्मिक और सारगर्भित भाषण दिया। इसी सम्मेलन में उन्होंने लोगों से अछूतों के सुधार के लिए तन, मन, धन से सहायता करने की अपील की और एक हरिजनों की स्वयं-सेवक सेना का संगठन किया।

लाला लाजपत राय ने अछूतों में शिक्षा प्रचार के लिए अपने पास से चालीस हजार रुपये का नकद दान दिया, ओर उसके लिए एक व्यावहारिक योजना भी। लाला जी की उदारता का लोगों पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा। जनता का ध्यान अछूतों के सुधार की आवश्यकता की ओर गया और उसने जी-भर कर इस शुभ कार्य में सहायता की। लाला जी ने अपने तत्त्वावधान में अछूत-बच्चों की कई

प्रारंभिक पाठशालाएँ स्थापित कराईं। उनको चलाने में सहायता और विकास की योजना दी।

इन सब कार्यों के अतिरिक्त लाला जी ने देश भर में घूम-घूमकर अछूतों की दयनीय दशा का जायजा लिया, उनकी उस दशा के कारण और उसके निवारण के उपाय खोजे और जनता को उससे अवगत कराने के लिए स्थान-स्थान पर भाषण दिये और समाचार-पत्रों में लेख लिखे। अछूतों के लिए सरकार की सहानुभूति पाने के लिए वे संयुक्त प्रांत के तत्कालीन लाट सर जेम्स मेस्टन से मिले और हरिजनों की समस्या पर विचार करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार शायद वे अछूतोद्धार की योजना में तब तक लगे रहते, जब तक उसमें उल्लेखनीय सफलता न पा लेते, किंतु उस समय की राजनीतिक हलचलों और विशेषतया बंग-भंग के सरकारी षड्यंत्र ने उन्हें उस राजनीति के मंच पर जाने के लिए विवश कर दिया, और वे अछूतों का सेवा-कार्य जनसेवक-समिति के योग्य कार्यकर्ताओं को सौंपकर मातृ-भूमि की स्वाधीनता के लिए उस दिशा में चले गये।

जिस समय लाला लाजपत राय कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में शामिल होने गए, उस समय उनकी आयु केवल तेईस वर्ष की थी, किंतु इस छोटी-सी आयु तक ही वे जनता की इतनी सेवा कर चुके थे कि जब वे इलाहाबाद के स्टेशन पर पहुँचे तो पं० मदन मोहन मालवीय और अयोध्यानाथ जैसे महान् नेताओं ने विशाल जन समूह के साथ उनका स्वागत किया। उस अधिवेशन में लाला लाजपत राय ने दो भाषण दिये, जिनमें उन्होंने अंग्रेजों के उस समय की पिट्ठू देशद्रोहियों की कड़ी आलोचना की और संवैधानिक धाराओं में सुधार की माँग की। उनके ऐतिहासिक भाषणों ने देश में एक नई ज्योति, एक नई हलचल और नई राजनैतिक चेतना पैदा कर दी। लाला लाजपत के इस उल्लेखनीय प्रवेश द्वारा कांग्रेस में एक नई जान आ गई। लोगों ने उनका महत्त्व जाना और नेतृत्व स्वीकार किया। भारत के इस नवोदित ने उस अधिवेशन में जो सबसे महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय काम किया, वह यह है कि अपना भाषण अंग्रेजी के बजाय हिंदुस्तानी में दिया और इस प्रकार कांग्रेस

की एक हीन परंपरा तोड़कर आदर्श परंपरा का प्रवर्तन किया। उसके बाद से कांग्रेस का काम भारतीय भाषाओं में भी होने लगा।

भारतीय शासन में सुधार के प्रस्ताव लेकर जब वे इंग्लैंड गये तब उन्होंने राष्ट्र के पक्ष में अंतर्राष्ट्रीय जनमत का समर्थन पाने के लिए उन्होंने लगभग सारे योरोप का दौरा किया। इसी क्रम में उन्होंने इंडिया हाउस की स्थापना में सहयोग किया और मैनचेस्टर, एडिनबरा और लिवरपूल जैसे महत्त्वपूर्ण स्थानों और योरोप के देहातों तक का भ्रमण किया। योरोप का जनमत पाने के लिए उन दिनों उन्होंने अथक परिश्रम किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों लेख लिखे और एक-एक दिन में कई-कई भाषण दिये। जिस समय वे विदेश में देश सेवा का काम करके भारत लौटे तो अपने साथ इंगलैंड की पार्लियामेंट का रोष, जनता की सद्भावना, क्रांति की एक नई चेतना और अमेरिका की शिक्षा पद्धति का ज्ञान लेकर आये थे। भारत आकर उन्होंने अपने अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर स्पष्ट घोषणा कर दी कि भिक्षावृत्ति के आधार पर भारत की स्वाधीनता नहीं मिल सकती, उसके लिए साहसपूर्वक अपने बल पर अपने ही पैरों खड़ा होना होगा और देश में परिवर्तनकारी क्रांति का जागरण करना होगा। आगे चलकर लाला लाजपत राय की यह दूरदर्शिता चरितार्थ होकर संसार के सम्मुख आई !

बंगाल उन दिनों सारे भारत की राजनीतिक चेतना का केंद्र हो रहा था। बंगाली नौजवान देश की स्वाधीनता के लिए सबसे अधिक उत्साह दिखला रहे थे। बंगाल का क्रांतिकारी जागरण गोरी सरकार के लिए एक समस्या था। बंगाल की शक्ति तथा संगठन कमजोर करने के लिए तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल को खंडों में बाँट देने का कुचक्र चलाया। लार्ड कर्जन के इस अक्रूरदर्शी कुचक्र ने न केवल बंगाल में ही बल्कि सारे भारत में विरोध की भयानक आग फैला दी।

लाला लाजपत राय ने बंग-भंग के विरोधी आंदोलन में पंजाब को शामिल कर बंगालियों की माँग का बल बढ़ा दिया। उन्होंने सत्याग्रह का आधार बंगाल की अखंडता, स्वराज, स्वदेशी और बहिष्कार बनाया। उन्होंने न केवल पंजाब ही बल्कि भारत के बहुत

से भागों में घूम-घूम कर आंदोलन का प्रचार किया। लोगों में स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार की भावना बढ़ाई। बंगाल की अखंडता और स्वराज की माँग के आंदोलन को सफल बनाने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया और अपार कष्ट उठाए।

विदेशी सरकर ने अपने हित में लाला लाजपत राय को एक भारी खतरा समझा और उन्हें उससे विरत करने के लिए बड़ा भय तथा लोभ दिखलाया और चाहा कि पंजाब का वह सिंह पुरुष किसी तरह उसके कब्जे में आ जाए। पद और प्रतिष्ठा का लोभ जब काम न आया तो सरकार ने उन्हें विविध प्रकार के त्रास दिये और वकालत की डिग्री छीन लेने का भय दिखलाया, किंतु सिद्धांत के धनी लाला जी जब इससे भी विचलित न हुए तो उसने उन्हें निर्वासन का दंड सुना दिया। इस तरह वे बिना मुकदमा चलाए भारत से मांडले भेज दिए गये। वहाँ के एक कष्टदायक एकांत कोठरी में रखे गये। उनके घूमने-फिरने, पढ़ने-लिखने, किसी से मिलने, यहाँ तक कि समाचार पत्र पढ़ने तक पर प्रतिबंध लगा दिया गया। किसी भी, सामाजिक, स्वतंत्र विचार और अध्ययनशील रुचि वाले व्यक्ति के लिए यह प्राण दंड से भी अधिक कष्टदायक था। लाला लाजपत राय को भारत ही नहीं, एक प्रकार से सारे संसार से ही पृथक् कर दिया गया। सरकार ने उनके इस कष्ट का लाभ उठाकर एक बार फिर उन्हें उनके विचारों, सिद्धांतों तथा उद्देश्य से विरत करने का प्रयत्न किया। सरकार की कार्यवाहियों का विरोध न करने के मूल्य पर मुक्त कर देने का लोभ दिखलाया ! किंतु जब उसने उन्हें अपने व्रत में चट्टान की तरह दृढ़ देखा तो परास्त होकर चुप हो गई और उनकी यातनाओं की मात्रा बढ़ा दी। छह-सात माह तक इस प्रकार पाशविक अत्याचार करने के बाद सरकार को जनमत के दवाब और संसार में लोक निंदा के भय से उन्हें मुक्त करना पड़ा। लाला लाजपत राय मांडले से पंजाब आए और फिर अपने पावन कर्तव्यों में लग गए !

दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गाँधी ने जब प्रवासी भारतीयों के कल्याणार्थ सत्याग्रह छेड़ा तो लाला लाजपत राय ने भारत में उसका बड़ा प्रचार किया। उन्होंने प्रवासी भारतीयों की सेवा के लिए

स्वयंसेवक दल संगठित किया और हजारों रुपयों की धनराशि एकत्र कर दक्षिण अफ्रीका भेजी।

यह सब काम करते हुए भी उनका मन राजनीति की ओर विरत होता जा रहा था। उसका कारण था—कांग्रेस में फूट पड़ जाना। इस दोष के कारण कांग्रेस निकम्मी होती जा रही थी ! अब उसका ध्येय जन-सेवा न रह गया था। उनके सारे नेता अपनी विरोधी विचारधारा वालों की आलोचना करने और उन्हें अपदस्थ करने में अपना समय बर्बाद करने में लगे थे। लाला लाजपत राय का जीवन ध्येय जन सेवा करना था। कोरी नेतागीरी से उन्हें घृणा थी ! अतएव उन्होंने उस समय कांग्रेस से हटकर अपना समय जनहित के कामों में लगाना ही अच्छा समझा ! उन्होंने वैसा किया भी।

कांग्रेस से हटकर लाला लाजपत राय पुनः लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज की सेवा में लग गए ! उन्होंने उसके लिए फिर धन संग्रह करना और लोगों में शिक्षा प्रसार करना आरंभ कर दिया। इस बार भी उन्होंने कॉलेज को हजारों रुपये और सैकड़ों उत्साही छात्रों का लाभ पहुँचाया। कॉलेज में अनेक नई शाखाएँ तथा कक्षाएँ खुलवाईं और राष्ट्रीय तथा उपयोगी शिक्षाओं का समावेश कराया। इन सेवाओं के साथ-साथ वे कॉलेज में समय-समय पर अध्यापन कार्य भी किया करते थे।

उन्हीं दिनों उन्होंने पुनः अछूतों की सेवा का कार्य अपने हाथों में लिया। इस बार उन्होंने हरिजन बच्चों की शिक्षा पर विशेष बल दिया। वे जानते थे कि बिना शिक्षा का प्रचार हुए इस वर्ग का उद्धार होना कठिन है। अतः जालंधर में उन्होंने एक पाठशाला खोली। उसका सारा खर्च स्वयं अपने पास से दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने ग्राम जरगाँव में एक स्कूल की स्थापना की और जल्दी ही प्रयत्न करके उसे हाई स्कूल करा दिया। इस स्कूल की स्थापना और विकास के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया और पास से धन भी लगाया !

अपनी सेवाओं के श्रेय स्वरूप लाला लाजपत राय जनता द्वारा भारी बहुमत के साथ लाहौर म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष बनाए गए।

उस पद का उन्होंने जनता के हित में बड़ा उपयोग किया ! उन्होंने उन्हीं दिनों लाहौर की सड़कों का सुधार कराया। कच्ची नालियाँ, जिनमें कि दिन-रात गंदगी सड़ा करती थी उन्हें पक्की कराई और गाँवों में बिजली की रोशनी का प्रबंध कराया। नगर के हरिजन दस्तकारों के लिए चमड़े के लघु उद्योग प्रारंभ कराए, जिनमें सैकड़ों शिल्पियों की जीविका का प्रबंध हो गया। नगर में आर्थिक विकास के लिए उन्होंने पंजाब नेशनल बैंक का विकास कराया और एक सहकारी जीवन बीमा कंपनी की स्थापना कराई। इसके अतिरिक्त उदारमना लाला जी ने राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सच्ची और ऊँची राष्ट्रीय शिक्षा दिलाने के लिए एक विशाल प्रशिक्षण संस्था स्थापित की ! इस स्थापना में व्यय होने वाला सारा धन उन्होंने अपने पास से ही लगाया। पैसे की कमी पड़ जाने पर उन्होंने अपना 'पंजाबी-पत्र' और प्रेस बेच डाला।

अपने उन दिनों के जन-कार्यों में लाला जी ने जो सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया, वह था वेश्याओं का सुधार। समाज पर वेश्यावृत्ति का कलंक देखकर लाला जी का हृदय वेदना से तड़प उठता था। उनसे समाज की इन अभागी नारियों की नारकीय दशा देखी न जाती थी। वेश्याओं का अस्तित्त्व वे समाज की नैतिकता के लिए हलाहल के समान मानते थे और चाहते थे कि समाज का यह विष दूर हो जाये ! अतः उन्होंने सबसे पहले उनको अनारकली के बाजार से हटाकर हीरा मंडी मुहल्ले में बसाया। वेश्यावृत्ति के विरुद्ध प्रचार करने के लिए बहुत से स्वयंसेवक तैयार किये। अनाथ स्त्रियाँ जो प्रायः रोटी के लिए इस भयानक जीवन को अपना लेती थीं, उनके लिए लाला जी ने अनाथालयों में स्थान कराया और बहुत-से ऐसे छोटे-मोटे शिल्पों का प्रचार कराया, जिनके आधार पर वे सम्मानपूर्वक अपनी आजीविका कमा सकें। उन्होंने वेश्याओं में भी शिल्प तथा शिक्षा का प्रचार करने का प्रयत्न किया। लाला जी के इन प्रयत्नों से वेश्याओं में सुधार के लक्षण दृष्टिगोचर हो चले थे।

लाला लाजपत राय ने स्पष्ट अनुभव किया कि अंग्रेज कूटनीतियों से प्रेरणा पाकर, मुसलमान और ईसाई वर्ग धार्मिक विद्वेष से हतबुद्धि होकर राष्ट्रीय स्वाधीनता और हिंदू जाति के हितों को

गहरी क्षति पहुँचाते जा रहे हैं और इधर हिंदू जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेद-भाव में फँसी दिन-दिन बिखरती और कमजोर होती जा रही है। अस्तु उन्होंने, राजनीति से पृथक् हिंदुओं के एक सामाजिक संगठन की बहुत बड़ी आवश्यकता समझी, जिसकी पूर्ति उन्होंने हिंदू महासभा की स्थापना को प्रोत्साहन देकर की। इस स्थापना के विषय में स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने घोषणा की—

"अपने देश के अन्य धर्मावलंबियों के प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। सभी के उन्नति और कल्याण में राष्ट्र का हित देखता हूँ। अपने संप्रदायों की दशा में सुधार करने और अपने धर्म-बंधुओं के लिए पद प्राप्त करने के जो भी प्रयत्न वे करते हैं, उनसे मेरा कोई विरोध नहीं है। भारत की वर्तमान राजनैतिक अवस्था में उन्हें अपने संप्रदाय के हितों की रक्षा करने का पूरा अधिकार है, किंतु इसके साथ शर्त यह है कि वे इसके लिए अभारतीयों के साथ कोई नापाक साँठ-गाँठ न करें और न हिंदुओं के हितों को हानि न पहुँचाएँ। अहिंदुओं के मुकाबले में हिंदुओं को और गैर-हिंदुस्तानियों के मुकाबले में हिंदुस्तानियों के लिए मेरा वही कहना है, जो दुर्योधन के विरुद्ध मिलकर युद्ध करने के प्रस्ताव लेकर आने वाले शत्रुओं से युधिष्ठिर ने कहा था—"पांडव और कौरव आपस में तो एक-दूसरे के विरुद्ध पाँच और सौ हैं, किंतु किसी तीसरे शत्रु के विरुद्ध हम सब एक सौ पाँच हैं।"

यों तो लाला जी एक प्रकार से राजनीति से संन्यास लेने जा रहे थे, तथापि उनके हृदय में भारतीय स्वाधीनता की आग यथावत् जलती रहती थी। इसी शिखा ने उन्हें १९२१ के सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय पुनः राजनीतिक कार्यों से संबंधित कर दिया। देश के इस महान् आंदोलन में लाला जी ने जमकर भाग लिया और पंजाब का सफल नेतृत्व किया ! पुलिस अत्याचार और जेल की सजा भुगती।

२ फरवरी १९२८ को जब साइमन कमीशन पहली बार भारत आया तो लाला लाजपत राय कतिपय कारणों से उनके बहिष्कार में कुछ अधिक सक्रिय भाग न ले सके। उनका ख्याल था कि कमीशन अपने वायदों के अनुसार भारत का कुछ हित साधन करेगा, किंतु

जब वह बिना कुछ किए देश की राजनीतिक जासूसी करके इंगलैंड चला गया और वहाँ से नया प्रपंच लेकर ११ अक्टूबर १९२८ को पुनः भारत आया, तो लाला जी ने उससे बहिष्कार का जोरदार नेतृत्व किया। ३० अक्टूबर को सायमन कमीशन लाहौर स्टेशन पहुँचा। लाला जी ने जनता के साथ वहीं जाकर बहिष्कार किया। लाला जी वहीं जुलूस को सभा में बदल दिया और अपने ओजस्वी भाषण से जनता के हृदय में जोश भर दिया। लाला जी बराबर बोलते गये और जनता सुनती तथा—'सायमन लौट जाओ' का नारा लगाती जाती थी ! अंत में जनता का उत्साह और लाला जी की दृढ़ता देखकर पुलिस कप्तान सैंडर्स से न रहा गया। उसने लाला जी पर लाठी चलाने की आज्ञा दे दी ! पुलिस ने लालाजी पर लाठियाँ बरसानी शुरू कर दीं। जनता में भयानक विक्षोभ की लहर दौड़ गई, किंतु लाला जी ने उसे शांत रहने का निर्देश करते हुए कहा—"आप सब लोग शांतिपूर्वक मेरे ऊपर होते हुए इस अत्याचार को देखें और विश्वास रखें कि मेरे ऊपर होने वाली लाठी की एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक-एक कील सिद्ध होगी !" जनता शांत सुनती रही, लाला जी बोलते रहे और पुलिस की लाठी चलती रही ! लालाजी तब बराबर बोलते और लाठियाँ खाते रहे, जब तक कि उन्होंने अपना भाषण पूरा नहीं कर लिया ! लोगों को यह देखकर आश्चर्य होता था कि उन भयंकर प्रहारों से गिरना तो दूर लाला लाजपतराय अपने स्थान तक से भी विचलित न हुए—धन्य थे पंजाब केसरी लाला लाजपत राय ! लाला जी का भाषण पूरा हो गया और पुलिस की लाठियों का काम भी !

शाम को उसी घायल अवस्था में पंजाब-केसरी ने लाहौरी गेट पर जनसभा की और जनता को भारत की स्थिति से अवगत कराते हुए उसका कर्तव्य बतलाया। देश की स्वाधीनता के लिए अपनी तरह ही शांति तथा धैर्यपूर्वक अत्याचार सहन करने का निर्देश दिया; अनंतर उनसे खड़ा न रहा गया और वे अपने निवास पर लौट आए। पुलिस की निर्दय लाठियाँ अपना काम कर गई थीं। लाला जी के कलेजे में सांघातिक चोटें आ गई थीं। वे चारपाई पर पड़ गये, तो फिर उठ न सके और १० नवंबर १९२८ को देश-धर्म

तथा समाज के लिए अपना तन, मन, धन और यहाँ तक जीवन देकर स्वर्ग सिधार गये। लाला जी की मृत्यु से देश भर में शोक छा गया और कई दिन मातम मनाया गया !

लाला लाजपतराय एक आदर्श पुरुष थे। उन्होंने अपने आदर्शों की व्याख्या करते हुए स्वयमेव एक स्थान पर कहा है—"मेरा मजहब हकपरस्ती है। मेरी मिन्नत कौम परस्ती है। मेरी इबादत खलक परस्ती है। मेरी अदालत मेरा अंतःकरण हैं। मेरी जायदाद मेरी कलम है, मेरा मंदिर मेरा दिल है और मेरी उमंगें सदा जवान हैं।"

लाला लाजपत राय ने अपनी सक्रिय सेवाओं के साथ-साथ साहित्य की कुछ कम सेवा नहीं की। उन्होंने मेजिनी, गैरीबाल्डी, शिवाजी, कृष्ण, दयानंद तथा गुरुदत्त आदि महापुरुषों की बहुत-सी शिक्षाप्रद जीवनियाँ लिखीं। 'आर्य-समाज और भारत का राजनीतिक भविष्य' नामक उनकी पुस्तकें बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई ! उनके 'यंग इंडिया' (तरुण भारत) नामक ग्रंथ ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम को एक विशेष गति दी थी और उनके 'दुःखी भारत' नामक ग्रंथ का तो जनता में अभूतपूर्व स्वागत हुआ। यह ग्रंथ उन्होंने 'मिसमेयो' नामक एक अंग्रेज महिला की लिखी—'भारत माता' नामक पुस्तक के उत्तर में लिखा था। यह भारत तथा उसकी तत्कालीन स्थिति पर एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसके अतिरिक्त उनके लिखे सामाजिक तथा राजनीतिक लेखों की संख्या अपरिमित है। इस प्रकार कदाचित् ही कोई ऐसा क्षेत्र बचा हो, जिसमें लाला लाजपत राय ने उपयोगी सेवा न की हो। उनका जीवन एक सफल एवं सार्थक व्यक्ति का जीवन था। उनके विषय में उनके एक जानकार श्री एलाबिलकाक्स ने ठीक ही तो लिखा है—

"यौवन ने उन्हें बहादुर, समय ने राजनीतिज्ञ, प्रेम ने मनुष्य घोषित किया। मृत्यु ने उन्हें शहादत का ताज पहनाया। इस प्रकार वे मंजिल पर मंजिल तय करते हुए महानता की ओर बढ़ते गए ! मानव-जीवन में संभव सब प्रकार की विभूति और यश का उन्होंने अनुभव किया। वे एक पवित्र और ऊँची आत्मा थे।"

जिस युग में लाला लाजपत राय ने सार्वजनिक सेवा और देशोद्धार का कार्य किया था, वह इतना विषम और कठिनाइयों से

परिपूर्ण था कि आज हम उसकी कल्पना भी सहज में नहीं कर सकते। उस समय भारत में विदेशी शासन का सिक्का सोलहों आने जमा हुआ था। साम, दाम, दंड और भेद की नीति का अवलंबन करके उन्होंने देश के सभी प्रभावशाली और शक्तिमान् लोगों को अपना अनुगत बना रखा था। किसी के दिल में यह ख्याल भी नहीं आता था कि भारतवासी ऐसी विश्वव्यापी शक्ति का विरोध करके अपने देश को स्वाधीन कर सकते हैं। जब सन् १९०६ में में श्री दादाभाई नौरोजी ने "स्वराज्य" को राष्ट्रीय आंदोलन का अंतिम लक्ष्य घोषित किया तो देश के अधिकांश जानकार व्यक्ति चौंक पड़े थे और उन्होंने इसको एक 'काल्पनिक विचार' ही समझा था। पर लाला लाजपत राय आरंभ से ही इस सिद्धांत के पूर्ण रूप से समर्थक थे और उन्होंने तत्काल ही इस संबंध में इतना जोरदार आंदोलन छेड़ दिया कि सन् १९०७ के आरंभ में ही सरकार को उन पर कानून का प्रहार करना पड़ा और गिरफ्तार करके देश के बाहर भेज देना पड़ा।

देश के स्वाधीनता संग्राम में यद्यपि हजारों स्थानीय, प्रांतीय और अखिल भारतीय नेताओं ने भाग लिया था और एक समय था कि उनमें से अनेकों का डंका बज रहा था, पर अब पचास-साठ वर्ष का समय निकल जाने पर उनमें से दो-चार का नाम ही स्मरण आता है। इसका कारण यही था कि उनका काम केवल सामयिक था। जन-आंदोलन के वेगवान् प्रवाह में वे भी मैदान में आ गये और लोगों के जोश को बढ़ाने वाले भाषण करके उन्होंने लोकप्रियता प्राप्त कर ली। निःसंदेह उनका यह कार्य उस समय महत्त्वपूर्ण था और इसके लिए उन्होंने उस समय स्वार्थ, त्याग और कष्ट भी सहन किया, पर उनके कार्य में विशेष स्थायित्व नहीं था। जन-आंदोलन की ऐसी जोरदार लहरें ज्वार की तरह भीषण वेग से उठती हैं और कुछ समय पश्चात् जोश के कम पड़ जाने से भाटा की तरह नीचे उतर जाती हैं। आंदोलन के सामायिक नेताओं की ख्याति का उतार-चढ़ाव भी इसी के अनुसार होता है। आज जिस नेता को लोग कंधों पर उठाकर जुलूस निकालते हैं, एकाध वर्ष बाद प्रायः इसका नाम भी भूल जाते हैं। कारण यही है कि किसी विशेष आंदोलन की

तरह ऐसे नेताओं का जोश और सेवा भावना भी अल्पजीवी ही होती है और कुछ समय पश्चात् वे अपने पुराने ढर्रे पर ही चलने लग जाते हैं।

देश की स्वाधीनता के लिए उनकी हार्दिक लगन तथा उसकी पूर्ति के लिए सदैव प्रचारात्मक तथा रचनात्मक कार्यों में लगे रहना ही लाला जी का सबसे बड़ा गुण था, जिसके कारण इतने वर्ष बीत जाने पर भी उनका नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है और उनके स्मारक खड़े किये जा रहे हैं। देश में और अनेक नेताओं ने उनसे बढ़कर प्रचार-कार्य किया था और कई देशभक्तों ने रचनात्मक क्षेत्र में भी बहुत ठोस कार्य करके दिखलाया है। पर लाला लाजपतराय की तरह रचनात्मक और प्रचारात्मक दोनों क्षेत्रों में समान रूप से क्रियाशील रहने और अपने सिद्धांतों पर आजीवन चलने वाले नेता कठिनता से दो-चार ही मिलेंगे। लालाजी के कुछ अनमोल वचन नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) देश सेवा से बढ़कर हमारा कोई धर्म नहीं है।

(२) जिस व्यक्ति में जातीय-गौरव और आत्म-सम्मान का विचार नहीं वह नर-पशु है।

(३) मानसिक दासता से अधिक हानिकारक और किसी भी तरह की दासता नहीं होती और न मनुष्य जाति को सदैव के बंधन में जकड़ने से बढ़कर और कोई घोर पाप हो सकता है।

(४) संसार में मातृ-शक्ति सबसे पवित्र और सबसे महान् है। यह सृष्टि को रचती है और उसकी रक्षा करती है। माताओं में से सबसे बड़ी और सबसे अधिक पूजा के योग्य मातृ-भूमि है, जो माताओं की माता है। इसलिए हमारा धर्म है कि हम इस मातृभूमि की सेवा से अपने जन्म को सफल करें।

(५) हिंदुस्तान की जातियों के वर्तमान संघर्ष में, मैं पहले हिंदू और पीछे हिंदुस्तानी रहूँगा, किंतु हिंदुस्तान के बाहर और हिंदुस्तान के भीतर भी किसी गैर-हिंदुस्तानी के सामने पहले मैं हिंदुस्तानी हूँ और रहूँगा, पीछे हिंदू।

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।